दो रपटें

धर्म के बारे में हमारा नज़रिया

धर्म क्या है? भगवान कहां हैं?

रीति-रिवाज़ किसने बनाए?

संस्कृति और मान्यताएं कब, कैसे बनती और बदलती हैं?

इन्हीं सब पर चर्चा चलती रही हमारी कार्यशाला में दो दिन के बजाए पांच दिन तक। इसके दौरान हमें धर्म की अहमियत का एहसास हुआ। धर्म हमारी ज़िंदगी के हर पहलू में है। लेकिन सामाजिक बदलाव के साथ धर्म में भी बदलाव की ज़रूरत है।

चर्चा इससे शुरू हुई—कौन किस तरह प्रार्थना करती हैं। समूह में हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई सब बहनें मौजूद थीं। ज़्यादातर बहनें हिंदू होती हुई भी अलग-अलग धाराओं की थीं जैसे राधा-स्वामी, आर्यसमाजी, कबीरपंथी या किसी न किसी गुरू की शिष्या।

अधिकतर औरतों ने ससुराल आकर पति के धर्म को मानना शुरू कर दिया था। अधिकतर औरतों को अपने धर्मों के बारे में बहुत कम ज्ञान था। धर्म को हमने मान्यताओं, परंपराओं और रूढ़िवादी विचारों से जोड़ रखा है।

धर्म से हमें क्या मिलता है?

औरतों का कहना था—

— धर्म से हमें शक्ति और सकून मिलता है।

— मैं भूखे को कभी अपने दरवाजे से खाली नहीं जाने देती, इससे मुझे मन की शांति मिलती है।

— मैं रोज एक-दो घंटा जाप करने से गुस्से पर काबू पा लेती हूं।

— धर्म से हमें मार्गदर्शन मिलता है।

— धर्म से हमारी मनोकामना पूरी होती है।

— दुख-दर्द में शक्ति मिलती है।

— धर्म हमें पहचान देता है। "हमारा रहन-सहन, जन्म-मरण, शादी-ब्याह, रीति-रिवाज़, परंपराएं हमें अलग-अलग समुदाय की पहचान देते हैं। हमें उससे सहारा और सुरक्षा मिलती है।

पुरुषों का प्रभुत्व

रामायण, कुरान और कुछ धार्मिक आचार-विचार की पुस्तकों पर चर्चा हुई। पति परमेश्वर, शौहर कोई भी गलत काम नहीं कर सकता। उसकी हर बात मानना, उसे हर हाल में खुश रखना ही नारी धर्म है। पुरुष अपनी मर्ज़ी से कितनी भी औरतों के साथ शारीरिक संबंध रख सकता है पर स्त्री अपने स्वामी की संपत्ति है। उसका पवित्र रहना ज़रूरी है। पुरुष अपना वंश चलाने के लिए औरत की कोख पर अपना नियंत्रण रखना चाहता है। इसलिए धर्म का नाम लेकर उस पर बहुत तरह की बन्दिशें लगाई गई हैं।

किसी भी धर्म को लें। उसमें पुरुषों की सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही नियम बनाए गए हैं। लेकिन ऐसा क्यों?

हिन्दू धर्म में हज़ारों की संख्या में व्रत हैं। ज़्यादातर व्रत औरतों के लिए ही हैं। कुछ व्रत

हमारी आवाज़ें

परदे के अन्दर से

अच्छा पति पाने के लिए, कुछ सुहाग कायम रखने के लिए, कुछ पुत्र की प्राप्ति के लिए तो कुछ विधवाओं के लिए। ज़ैसे बिना पुरुष के सहारे उनका कोई अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

विधवाओं की स्थिति धर्म ने अमानवीय तरीके से आंकी है। उन्हें सादा जीवन बिताना चाहिए। सादा खाना, सादा पहनना चाहिए। यानि पति की मौत के बाद औरत को जीने का कोई हक़ नहीं है। जिस धर्म में देवियों को पूजा जाता है उसी में औरतों पर इतना अत्याचार क्यों?

चर्चा से हम इस नतीजे पर पहुंचे कि हम स्त्रियों के लिए धर्म इसलिए इतना कठोर है क्योंकि इसे बनाने में मर्दों की भूमिका ज़्यादा रही है।

सभी औरतों ने कहा कि धर्म हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा है। हम अपने धर्म को नहीं छोड़ सकते।

कुछ सवाल

सभी धर्मों के नियम पुरुषों ने बनाए हैं। भगवान ने नहीं, खुदा ने नहीं, यीशु ने नहीं। अगर सारे नियम इंसान ने ही बनाए हैं तो इनको बदला क्यों नहीं जा सकता? हम औरतों के हित में औरतों के नज़रिए से नए नियम, नई परंपराएं, नई नारी का धर्म कौन बनाएगा?

चर्चा पर्दे पर: फायदे कम, मुश्किलें हज़ार

पर्दे कई तरह के होते हैं—

— बुर्का, घूंघट, चिलमन, दुपट्टा
— आंखों का पर्दा
— ज़ुबान का पर्दा
— छूने का पर्दा
— लक्ष्मण रेखा का पर्दा
— इंसान-इंसान के बीच तरह-तरह की दीवारें

रसूल ने जंग के समय पर्दा लागू किया। यहूदी-मुसलमानों की लड़ाई थी। औरतों की हिफ़ाजत के लिए पर्दा बना।

दक्षिण भारत में पर्दे की प्रथा उत्तर भारत के मुकाबले में बहुत कम है।

पर्दे के अंदर हों या बाहर, औरतों पर ज़ुल्म सब जगह हो रहे हैं।

जामा मस्जिद के पास रहने वाली औरतों और लड़कियों में दो दिन तक पर्दे पर चर्चा चली। लड़कियों का कहना था—

मुझे तो बुर्के में बहुत घुटन महसूस होती है।

पर्दे से हिफ़ाजत भी है। रास्ते में लड़के हमें देख नहीं सकते।

गैर मर्द की नज़र से बच जाते हैं पर घुटन बहुत होती है।

बड़ी होने पर ज़बर्दस्ती पहनना पड़ता है।

जब मैं नया बुर्का बनाती हूं तो गुस्सा आता है क्योंकि कपड़ा इतना मंहगा होता जा रहा है।

बड़े बूढ़े कहते हैं बुर्का पहनने से चेहरे पर नूर आ जाता है।

हमारे बुर्का ओढ़ने से हमारे मां-बाप की इज्ज़त है, हमारी भी।

पर्दे से न इज्ज़त बढ़ती है, न घटती है। बुर्के-वालियों को भी कम नहीं छेड़ा जाता।

पहले लड़कियां चुपचाप पहन लेती थीं। आज वे बोलने लगी हैं। अगर मर्जी नहीं है तो साफ़ मना कर देती हैं।

जहांगीरपुरी, बारहपुला और मंगलापुर (पालम) के मिले-जुले अनुभव:

ससुराल आते ही पर्दे में गिर पड़ी। बड़ा गुस्सा आया था। आज तक उलझन बनी हुई है।

मैं दिल्ली आई तो बुर्का पहनती थी। पति पूरा पैसा नहीं देते थे। काम ढूंढने बाहर निकलना पड़ा। तब पर्दा छोड़ दिया। पति ने डांटा पर कोई और चारा भी नहीं था।

तीन-तीन घंटे नल की लाइन में खड़ा होना पड़ता था। तब बुर्के से बड़ी उलझन होती थी। भाड़ में जाए ऐसा पर्दा जिससे जान जाए।

घूंघट करती थी तो रोटी बनाते समय कई बार हाथ जला। घूंघट पर बड़ा गुस्सा आता था। गांव में पानी भरने गई। कीचड़ में पांव फिसल गया। चोट की किसी को फिक्र नहीं। घड़ा फूटने पर डांट पड़ी। कसूर घूंघट का था।

ससुराल में शौचालय नहीं था। रात अंधेरे में ही जा सकती थी। आधा पेट खाना खाती थी कि कहीं दिन में दर्द न उठ जाए।

मैं गांव से शहर आई तो चैन की सांस ली। अपनी बेटी की शादी शहर में करूंगी। ऐसे घर में जहां घूंघट न करना पड़े। वरना उसे पढ़ाने-लिखाने का क्या फ़ायदा?

दक्षिणपुरी, नंदनगरी, बसंत गांव में:

पर्दा तो समाज ने लागू किया है।

मैं बड़ी हुई तो जबर्दस्ती बुर्का ओढ़ा। सहेली को बताया कि घुटन महसूस होती है। एक दिन भैया, भाभी और मैं कहीं जा रहे थे। मेरी सहेली ने अपने भाई को भेज दिया। उसने भैया को सलाम किया। मेरा नक़ाब उठाते हुए बोला भाभी हमें भी अपने साथ ले चलिए। मुझे देखकर वह झेंप गया। भैया ने उस दिन से मेरा बुर्का उतरवा दिया।

पहले मुझे घूंघट अच्छा लगता था लेकिन काम में दिक्कत होती है। इसलिए अब पसंद नहीं।

चर्चा से निष्कर्ष

अधिकतर लड़कियों और महिलाओं को पर्दा करना अच्छा नहीं लगता है। यह हमारे पुरुष सत्तात्मक समाज की देन है। एक भागीदार के शब्दों में—मुझे तो लगता है कि स्त्री में हीन भावना पैदा करने के लिए ही पुरुषों ने यह प्रथा बनाई है। भगवान ने सबको दो आंखें दी हैं देखने के लिए। पुरुष पर्दा नहीं करते तो स्त्री क्यों करे? क्यों हम इन रस्सियों में बंध कर रहें?

यह भी स्त्रियों के साथ भेदभाव है। जब तक भेदभाव चलेगा हम स्त्री-पुरुष की समानता की बात कैसे कर सकते हैं?

एक्शन इंडिया व सबला संघ से प्राप्त रपटें